में आये), झघड़ा करे तो बापू पार आये ऐसा नहीं है। वादविवाद करे तो पार नहीं आता। वह तो लंबे काल से उस प्रकार की कुयुक्ति सीखा हो तो बात करने में तो पार नहीं आता। वस्तु को समझे तो.. ओहो..! यह तो बहुत फ़र्क़ है। सच्चे शास्त्र के बहाने उसके जूठे अर्थ करके कुशास्त्र का पोषण करता है।

सच्चे शास्त्र का लक्षण अनेकांत है। आज आयेगा, भाई! सच्चा शास्त्र का लक्षण अनेकांत है। अनेकांत अर्थात् राग से वीतरागता नहीं, वीतराग से राग नहीं। जीव से जड़ नहीं और जड़ से जीव नहीं, व्यवहार से निश्चय नहीं और निश्चयमें से व्यवहार उत्पन्न होता नहीं। बस, वही यह अधिकार कहता है।

राग-द्वेष-मोहभावों का अभाव करके और वीतरागभाव का प्रयोजन (प्रगट करके), देखो! अनेकांत हो गया। राग-द्वेष और अतत्त्व श्रद्धा का अभाव और सत् स्वतत्त्व की श्रद्धापूर्वक अन्दर वीतरागता के परिणाम की उत्पत्ति, इसका नाम अनेकांत कहने में आता है। ऐसा अनेकांत शास्त्र का लक्षण है। समझ में आया? (अधिकार) आप का ठीक आया है। भगवानजीभाई!

'**जिन शास्त्रों में किसी प्रकार...**' किसी प्रकार से, ऐसा कहते हैं। कहीं कहा हो कि देखो भाई! ज्ञानी-निमित्त पहले मिलने चाहिये....

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

रविवार, दि. ३०-११-१९५२,
तीसरा अधिकार, प्रवचन नं. २

... उसमें अभी अधिकार यह है कि आत्मा में ज्ञान की जो पर्याय है, वह ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय के कारण, उघाड़ के कारण ज्ञान की पर्याय और दर्शन की पर्याय का क्षयोपशमरूप थोड़ा विकास है, वह इच्छा सहित दुःख का कारण है। तब शिष्य ने प्रश्न किया कि, उस इच्छा में एक-एक विषय को ग्रहण करे तो बहुत इकट्ठा होकर उसे सुख हो कि नहीं? समझ में आया? ऐसा प्रश्न है।

'**जिस प्रकार कण-कण करके अपनी भूख मिटाये उसी प्रकार एक-एक विषय का ग्रहण करके अपनी इच्छा पूर्ण करे तो दोष क्या?**' अल्प ज्ञान

में नयी-नयी... और नये-नये विषय ग्रहण करे। तो शिष्य ने कहा कि नया-नया ग्रहण करे और नया-नया सब ज्ञान इकट्ठा होकर सुखी होगा। एक-एक विषय को जानकर बहुत विषय को जानकर इच्छा पूर्ण होकर ज्ञान में इकट्ठी दशा होकर सुखी होगा। गुरु कहते हैं कि ऐसा नहीं बनता। ज्ञान की पर्याय हिन है और उसमें इच्छा नयी-नयी हो और ज्ञान की अवस्था भी नयी-नयी होती है। एक-एक विषय आये उसे ग्रहण करे, दूसरा विषय आये तो उसका ज्ञान छूट जाता है। वह इच्छा करे तो भी जानपना छूट जाता है। इसलिये वहाँ इकट्ठा होता नहीं। तो (शिष्य) कहता है कि कण-कण करके इकट्ठा हो तो? बहुत भूख हो और कण मिले, फिर कण-कण इकट्ठा होकर भूख मिटे तो? इस प्रकार एक-एक विषय को ग्रहण करके अपनी इच्छा पूर्ण करे तो दोष क्या है?

'**यदि वे कण एकत्रित हों तो ऐसा ही मान लें...**' एक कण खाया वह हजम हो गया, फिर दूसरा आया। वह कण एकत्रित नहीं होते हैं। '**परन्तु जब दूसरा कण मिलता है तब पहले कण का निर्गमन हो जाये तो कैसे भूख मिटेगी?**' एक मण (--चालीस सेर का वज़न) की भूख हो और कण-कण मिले तो भूख मिटती नहीं। '**उसी प्रकार जानने में विषयों का ग्रहण एकत्रित होता जाये...**' देखो! थोड़ा न्याय समझना। आत्मा के ज्ञान की विकसित पर्याय में एक-एक विषय को जानने पर ज्ञान की पर्याय नयी और इच्छा भी नयी (होती है)। वह सब ज्ञान कहीं एकत्रित नहीं होता है। '**जानने में विषयों का ग्रहण एकत्रित होता जाये तो इच्छा पूर्ण हो जाये, परन्तु जब दूसरा विषय ग्रहण करता है...**' दूसरे विषय को जानने में ज्ञान रुके '**तब पूर्व में जो विषय ग्रहण किया था उसका जानना नहीं रहता, तो कैसे इच्छा पूर्ण हो?**' ज्ञान की पूर्णता हुए बिना इच्छा किसी भी प्रकार से पूर्ण होती नहीं। '**इच्छा पूर्ण हुए बिना आकुलता मिटती नहीं है और आकुलता मिटे मिटे बिना सुख कैसे कहा जाय?**' आकुलता मिटे बिना सुख हो नहीं सकता।

'**तथा एक विषय का ग्रहण भी...**' अब थोड़ा यह विषय है। यह जीव '**मिथ्यादर्शनादिक के सद्भावपूर्वक करता है,...**' क्या कहा? आत्मा में ज्ञानस्वभाव तो त्रिकाल है परन्तु वर्तमान पर्याय में ज्ञान और दर्शन की अल्प विकासशक्ति के कारण एक विषय के जानकर जहाँ दूसरा जानने जाता है तो पहले का जानपना चला जाता है। फिर भी उस विषय ग्रहण करते समय भी मिथ्यादर्शनादिक के सद्भावपूर्वक विषय को जानता है। उस विषय को मैंने भोगा, उस विषय को मैंने जाना, उस विषय के कारण मुझे इच्छा हुई, उस विषय के कारण मुझे संतोष हुआ। इसप्रकार विषय को जानते हुए तो मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याराग के कारण मिथ्यादर्शन,

ज्ञान, राग के सद्भावपूर्वक जानता है। मात्र जानने-देखनेवाला रहता हो तो तो चैतन्यपना... एक विषय का राग हुआ उसे जाना, उस जाननेवाले को जानते हुए उसने जाना। यह तो राग को जानते हुए पूरा स्वरूप मानों राग में ही समा गया। विषय से स्वाद आया, विषय से राग हुआ और राग से मेरा ज्ञान हुआ। एक विषय को जानने में भी उसे जो मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्या आचरण के सद्भावपूर्वक उस विषय को जानता है। कहो, समझ में आया? मोहनभाई! यह पैसा मिला, उसे वह ज्ञान जाने, वह मानता है कि मैंने इकट्ठा किया, मैंने प्राप्त किया। एक को जानने में भी मिथ्यादर्शनपूर्वक जानता है। मैं ज्ञाता हूँ, उसके कारण हुआ, मुझे जानते हुए मेरे स्वपरप्रकाश में वह ज्ञात हो जाता है, ऐसा वह नहीं मानता है।

एक-एक विषय को ग्रहण करने में भी यह जीव विपरीत श्रद्धा, विपरीत ज्ञान और विपरीत राग के आचरण द्वारा उसकी मौजूदगी से उस विषय को जानता है। कहो, समझ में आया? वह विषय था तो ज्ञान हुआ, विषय था तो राग हुआ, विषय था तो आनन्द आया, मुझे आनन्द आया इसलिये मैं बहुत विषयों को एकत्रित करुँ। ऐसी विपरीत श्रद्धा, विपरीत ज्ञान और विपरीत आचरणपूर्वक वह, उसकी मौजूदगीपूर्वक उसको जानता है।

सम्यक्ज्ञान भी एक-एक विषय को जाने तो मेरे जानने में बहुत ताकत है और मुझे जानते हुए मैं उसको जानता हूँ, ऐसा वह मानता नहीं। कहो, समझ में आया? एक विषय को ग्रहण करने में एक शब्द को, एक पुस्तक को, कोई भी यात्रा को, इज्जत को, कीर्ति को, एक भी विषय को ग्रहण करते हुए, इससे मुझे सुख हुआ, उतना ही ज्ञान का करनेवाला हूँ, वह वस्तु थी तो मुझे ज्ञान हुआ, वह वस्तु थी तो मुझे आनन्द आया, इसप्रकार मिथ्यादर्शनादिक की मौजूदगीपूर्वक उस विषय को ग्रहण करता है, इसलिये सुखी नहीं होता है।

'**इसलिये आगामी अनेक दुःखों के कारण कर्म बँधते है।**' भावि अनेक दुःखों के कारणरूप कर्मों को बाँधता है। '**इसलिये यह वर्तमान में सुख नहीं है,...**' कहो, पोपटभाई! समझ में आया? एक विषय आया। एक लड़का आया लड़का। जन्म हुआ तो लगा, अच्छा हुआ, मेरा बाँझपना मिट गया। उस एक को जानते हुए मिथ्यादर्शनपूर्वक हयातस्वरूप जानता है। बाँझपना कब और बाँझपना सुनना मिटे कब? एक लक्ष्मी आयी तो, चलो अच्छा हुआ, इतना तो सुख हुआ। अब पुत्र की बात। एक-एक जानते हुए विपरीत श्रद्धा, विपरीत ज्ञानपूर्वक उसको जानता है। इसलिये वर्तमान में दुःखी और भविष्य में भी दुःख के कारणभूत कर्मों को बाँधता है। कहो, बराबर है यह? वाड़ीभाई! भाई! एक विषय को जानते हुए। पुत्र का जन्म हुआ। चलो अच्छा

हुआ। एक को जानते हुए, अब हम सुखी होंगे, वह हमें कमाकर देगा। जानने में तो विपरीत श्रद्धापूर्वक जानता है। विपरीत मान्यता, विपरीत ज्ञान और राग करके जानता है। इसलिये वर्तमान दुःखी और भविष्य में भी दुःखी है। कहो, समझ में आया? '**इसलिये दुःख ही है। यही प्रवचनसार में कहा है।**'

सपरं बाधासहियं विच्छिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इंदिएहिं लद्धं तं मोक्खं दुःखमेव तथा।।७६।।

'**अर्थ :-- जो इन्द्रियों से प्राप्त किया सुख है वह पराधीन है,...**' लो, शब्द, रूप, रस, गंध और... समझ में आया? वर्ण और मन की कल्पना--यह सब इन्द्रियों से प्राप्त हुआ सुख पराधीन है। '**बाधासहित है,...**' यह बात अपने विस्तार से आ गयी है। इन्द्रियों के सुख में विघ्न है। वह उसी रूप रहे, यह कहीं आत्मा के आधीन नहीं है। '**विनाशीक है,...**' इन्द्रियों के विषय ही नाशवान अनित्य हैं। स्वयं अविनाशी नित्य है। '**बन्ध का कारण है...**' विषय बंध के निमित्त हैं और वह विषय '**विषम है,...**' एकरूप रहनेवाले नहीं है और दुःख कारण है। '**सो ऐसा सुख इस प्रकार दुःख ही है।**'

'**इस प्रकार इस संसारी जीव द्वारा किये उपाय झूठे जानना।**' लो, क्या उपाय किया? जानने में बहुत विषयों को ग्रहण करुँ और नयी-नयी इच्छा करके इच्छा पूर्ण करुँ। समझ में आया? उसी प्रकार इन्द्रियों को पुष्ट करके मेरी इच्छा पूर्ण करुँ, ऐसा जो उपाय करना चाहता है, उसके वह उपाय झूठे हैं। वह विषय की तृप्ति के कारण नहीं है। कहो, बात बराबर समझ में आती है?

'**तो सच्चा उपाय क्या है? जब इच्छा तो दूर हो जाये...**' देखो, अब दो न्याय देते हैं, दो। '**जब इच्छा दूर हो जाये और सर्व विषयों का युगपत् ग्रहण बना रहे तब यह दुःख मिटे।**' देखो, दो बात हुई। ज्ञान की पर्याय हिन है इसलिये युगपत् जानना एकसाथ होता नहीं है और इच्छा है वह नयी-नयी होने से इच्छा की पूर्णता नहीं होती है। इसलिये एक-एक विषयग्रहण से और एक-एक इच्छा से वह इच्छा पूर्ण नहीं होती है और ज्ञान में तृप्ति नहीं होती है। जब इच्छा दूर हो, देखो निमित्त मिला, और सर्व विषयों का युगपत् ग्रहण हो, दूसरी बात। ज्ञान में उघाड़ कम है, पूर्ण उघाड़ करे तो सब विषयों को जाने और कम उघाड़ में जो इच्छा से विषय को देखता है, वह इच्छा दूर करे तो दुःख मिटे। इसके बिना दुःख मिटे नहीं। समझ में आया? क्या उपाय कहा?

उस इच्छा को दूर करना और सब को युगपत् जानना। '**सो इच्छा तो महो जाने पर मिटे...**' मोह मिटाये बिना इच्छा मिटे नहीं। '**और सब का युगपत् ग्रहण**

केवलज्ञान होने पर हो।' देखो! दो बात कही। मोह का नाश करे तो इच्छा दूर हो और सर्व का ग्रहण केवलज्ञान करे तो हो। अस्ति-नास्ति से बात कही। इच्छा का नाश मोह का नाश करे तो हो। समझ में आता है? और सर्व का युगपत् ज्ञान केवलज्ञान प्रगट करे तो हो। उस मोह के नाश का और केवलज्ञान की उत्पत्ति करने का यानी कि इच्छा दूर करने का और सर्व को युगपत् जानने का... इच्छा को दूर करने का और सर्व को युगपत् जानने का उपाय '**सम्यग्दर्शनादिक है...**' लो, यह उसका उपाय।

इन्द्रियों की पुष्टी करना, एक-एक विषय को जानना और वह सब ज्ञान एकत्रित करना और इच्छा को टालूँ, ऐसा तीन काल में बनता नहीं। लो, उपाय लाकर रखा। इच्छा को दूर करने का उपाय मोह का नाश करना है और सब को ग्रहण करने का उपाय केवलज्ञान की उत्पत्ति है। उस मोह का नाश और केवलज्ञान की उत्पत्ति सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र से होती है। लो, इच्छा और मोह का नाश सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से होता है। मोह का नाश होनेपर केवलज्ञान की उत्पत्ति, सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से होती है। दूसरा कोई उपाय से होता नहीं। ल्यो, विषयों को बहुत जानना, इन्द्रियों की बहुत पुष्टी करनी, जल्दी-जल्दी विषयों को बदलकर एकदम तृप्ति करनी, यह उपाय कहीं सच्चा नहीं है। लो, लाकर रखा।

मोह का नाश और केवलज्ञान की उत्पत्ति। अर्थात् न्यून ज्ञान की पूर्णता और इच्छा का अभाव। अल्प ज्ञान का नाश करके पूर्ण ज्ञान और इच्छा है उसका अभाव अर्थात् मोह का अभाव। मोह का अभाव और केवलज्ञान की उत्पत्ति मोक्षमार्ग से होती है। सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से होती है, इसके अतिरिक्त कोई उपाय है नहीं। इन्द्रियों की पुष्टी से नहीं, विषयों को जानने से नहीं। समझ में आया? नयी-नयी इच्छा करुँ और फिर ज्ञान एकत्रित करुँ और विषयों का एकदम संग्रह करुँ, यह सब अज्ञानी के उपाय, इच्छा टालने का और ज्ञान को एकत्रित करने का सच्चे नहीं हैं। सच्चा उपाय तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र है। आत्मा परिपूर्ण आनन्दकंद है, उसकी प्रतीति, उसका ज्ञान, उसकी रमणता करते-करते मोह और इच्छा का नाश हो और केवलज्ञान होता है। दूसरा कोई आत्मा के सुख का, इच्छा के नाश का और सब को युगपत् जानने का दूसरा कोई उपाय नहीं है।

'**यही सच्चा उपाय जानना।**' तो यह सब असत्य उपाय हुए? वाड़ीभाई! पुत्र को शिक्षित करके खुशी होना, मकान बनाकर खुशी होना, स्त्री खुश हो तो खुशी होना, पुत्र होशियार हो तो खुशी होना, पुत्र का अच्छे ठिकाने ब्याह हो तो खुशी होना। मोहनभाई! यह उपाय सत्य होंगे कि नहीं? स्वयं बहुत पढ़ाई करके ... खुशी

होना, यह सब उपाय सत्य है कि असत्य? वह सब शून्य करने जैसे उपाय हैं। रतिभाई! कहो, यह फिल्म देखकर खुशी होना। कहो, ... की फिल्म आयी है न? नयी-नयी बुद्धि उसमें से खिले, एक देखे तो दूसरा भूल जाये, दूसरा देखे तो तीसरा भूल जाये, वह एकत्रित होता नहीं। कहो, समझ में आया?

आत्मा का स्वभाव ज्ञान, उसकी एक समय की पर्याय में उघाड़ कम, वह सब को ग्रहण करने जाता है, वहाँ उन सब को ग्रहण करने की ताकत ही नहीं है और इच्छा से तृप्ति करने जाये तो नयी-नयी इच्छा होती रहती है। इसलिये एक ही सत्य उपाय है कि इच्छा नाम विकार को मिटाना और केवलज्ञान की पर्याय प्रगट करनी। यानी पूर्ण ग्रहण करे ऐसी दशा प्रगट करनी और अल्प भी इच्छा रहे नहीं। अर्थात् विकार रहे नहीं। विकार माने मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र। यह तीन न रहे और सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र द्वारा केवलज्ञान होकर मोह का नाश होता है। इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है।

'**इस प्रकार तो मोह के निमित्त से ज्ञानावरण-दर्शनावरण का क्षयोपशम भी दुःखदायक है उसका वर्णन किया।**' क्या वर्णन किया? कि उघाड़भाव दुःख कारण क्यों कहा? मोह के निमित्त से। वह उघाड़ दुःख का कारण नहीं है। क्षयोपशम है न? क्षयोपशम ज्ञान, वह दुःख का कारण नहीं है। परन्तु मोह के निमित्त से इच्छा के कारण ज्ञानावरण, दर्शनावरण का जो उघाड़ भी दुःखदायक है, उसका वर्णन किया। इसलिये वह अल्प उघाड़ दुःखदायक है। क्योंकि साथ में इच्छा रही है, इच्छा साथ में रही है इसलिये। क्षयोपशम स्वयं दुःखरूप नहीं है। इसलिये प्रश्न करता है।

प्रश्नकार का प्रश्न है कि उघाड़ को आप दुःख का कारण क्यों कहते हो? देखो, प्रश्न। '**ज्ञानावरण-दर्शनावरण के उदय से जानना नहीं हुआ, इसलिये उसे दुःख का कारण कहो,...**' जितना जानने-देखने का भाव नहीं है उसे तो दुःख का कारण कहो, परन्तु जितना उघाड़--क्षयोपशम है उसको दुःख क्यों कहते हो? ...भाई! प्रश्न बराबर है? यह जानना-देखना न हो वह तो दुःख का कारण है ऐसा कहो, परन्तु जो उघाड़ है उसे आप ने दुःख का कारण क्यों कहा? ऐसा प्रश्नकार ने प्रश्न किया।

'**समाधान :-- यदि जानना न होना दुःख का कारण हो तो पुद्गल के भी दुःख ठहरे...**' तो इस जड़ को बहुत दुःख ठहरे--लकड़े को। नहीं जानना यदि दुःख हो... देखो न्याय! आत्मा में जितना उघाड़ नहीं है, यदि वह दुःख हो तो, तो फिर लकड़े को अधिक दुःख होना चाहिये। क्योंकि लकड़े में बिलकुल ज्ञान नहीं है। बराबर है यह? जानना न होना वह यदि दुःख का कारण हो तो पुद्गल नाम जड़ को भी दुःख ठहरे। उसमें ज्ञान नहीं है तो बहुत दुःखी होगा, वह तो बहुत

दुःखी होगा। दुःखी तो है नहीं। '**परन्तु दुःख का मूलकारण तो इच्छा है...**' न जानना वह दुःख का कारण नहीं है। दुःख का मूल कारण तो इच्छा, विकार (है)। समझ में आया? '**इच्छा है और इच्छा क्षयोपशम से होती है,...**' थोड़ी समझने जैसी बात है।

ज्ञान और दर्शन की अवस्था अल्प है, उस भूमिका में इच्छा होती है ऐसा कहना है। जहाँ ज्ञान पूर्ण प्राप्त हुआ है वहाँ इच्छा होती नहीं। सर्वज्ञदशा जहाँ आत्मा में हो, वहाँ इच्छा होती नहीं। इसलिये कहते हैं कि अल्प ज्ञान से इच्छा होती है ऐसा वर्णन किया है। वास्तव में उस ज्ञान से इच्छा नहीं होती है। परन्तु जो अल्प ज्ञान है, उस भूमिका में उसे इच्छा हो जाती है। वह राग का दोष है। परन्तु यहाँ क्षयोपशम को निमित्त गिनकर इच्छा में निमित्त मोह और क्षयोपशम में दुःख का निमित्त इच्छा। समझ में आया?

'**इच्छा क्षयोपशम से होती है, इसलिये क्षयोपशम को दुःख का कारण कहा है;...**' कम उघाड़ हो उसे इच्छा रहा करती है। बहुत जानुँ, बहुत विषय ग्रहण करुँ, नयी-नयी इच्छा करुँ, जगत में मान प्राप्त करुँ, ऐसा करुँ-ऐसा करुँ इस प्रकार मिथ्या प्रयत्न करता रहता है, व्यर्थ प्रयत्न। और कम ज्ञान में इच्छा उत्पन्न हुई इसलिये कम ज्ञान इच्छा का कारण बना। अपेक्षा से कहा है। '**परमार्थ से क्षयोपशम भी दुःख का कारण नहीं है।**' लो, वास्तव में ज्ञान और दर्शन का उघाड़ का अंश है वह कहीं दुःख का कारण नहीं है और उसका अभाव है वह भी दुःख का कारण नहीं है। लो, ज्ञान और दर्शन की उघाड़रूप पर्याय भी दुःख का कारण नहीं है, और उघाड़ नहीं हुआ है वह भी दुःख का कारण नहीं है। दुःख का कारण तो एकमात्र परपदार्थ की इच्छा, पराधीनता, परपदार्थ मिले तो सुखी होऊँ--ऐसी इच्छा, सुखी होऊँ ऐसी इच्छा ही दुःख का कारण है।

'**जो मोह से विषय-ग्रहण की इच्छा है वही दुःख का कारण जानना।**' लो, इच्छा दुःख का कारण है। 'क्या इच्छत खोवत सबै, है इच्छा दुःखमूल, क्या इच्छत खोवत सबै,' इच्छा है वहाँ आत्मा के ज्ञान-दर्शन की पर्याय की शक्ति का घात होता है। 'क्या इच्छत खोवत सबै, है इच्छा दुःखमूल।' इच्छा कौन करता है? अंतर में सुख और शांति न देखे वह। वह परपदार्थ की इच्छा करता है। इसलिये इच्छा तो दुःख का मूल ही है। '**वही दुःख का कारण जानना। मोह का उदय है सो दुःखरूप ही है...**' वह इच्छा और मोह का उदय निमित्त है। समझ में आया? '**सो दुःखरूप ही है, किस प्रकार सो कहते हैं :--**' अब यह दर्शनमोह का उदय और चारित्रमोह के उदय की परिभाषा बतानी है।

दर्शनमोह के उदय से होता दुःख और उसके उपायों का मिथ्यापना। अनादि अज्ञानी जीव '**दर्शनमोह के उदय से मिथ्यादर्शन होता है;...**' क्या कहते हैं? दर्शनमोह है वह मिथ्यात्व के परमाणु जड़ धूल है। उसका जब उदय होता है तब, अज्ञानी विपरीत श्रद्धा करे तो उस कर्म को निमित्त और उदय कहने में आता है। उस मिथ्याश्रद्धा के कारण अनादि का अज्ञानी, '**उसके द्वारा जैसा इसके श्रद्धान है वैसा तो पदार्थ होता नहीं है,...**' क्या कहते हैं? उस अज्ञानी की जैसी श्रद्धा है वैसा पदार्थ का स्वरूप नहीं है। तथा जैसा पदार्थ का स्वरूप है वैसा वह मानता नहीं है। देखो न्याय! अस्ति-नास्ति की है। '**उसके द्वारा जैसा...**' मिथ्या मान्यता ही अनंत संसार का कारण है। मिथ्यादर्शन शल्य--विपरीत रुचि और विपरीत अभिप्राय, '**उसके द्वारा जैसा इसके श्रद्धान है वैसा तो पदार्थ होता नहीं है...**' पदार्थ मुझे सुख का कारण है, ऐसा मिथ्यादृष्टि मानता है। वह पदार्थ वैसा नहीं है। समझ में आया? श्रद्धान है वैसा पदार्थ नहीं है और जैसा पदार्थ का स्वरूप है ऐसा मानता नहीं है।

पदार्थ है सो निमित्तमात्र है। पदार्थ आत्मा को सुख-दुःख उत्पन्न नहीं करते हैं। परन्तु मिथ्यादृष्टि ऐसा मानता है कि यह निमित्त आया तो (सुख) हुआ। ऐसी मिथ्यादृष्टि की मान्यता अनुसार पदार्थ नहीं है और पदार्थ है ऐसी उसकी मान्यता नहीं है, इसलिये दुःखी हो रहा है। कहो, बराबर है? यह पैसा मुझे सुखरूप है। पैसा का स्वरूप तो ऐसा नहीं है। यह लड्डु मुझे सुखरूप है। लड्डु का सुख नहीं है। उसकी मान्यता अनुसार पदार्थ नहीं है और पदार्थ अनुसार मान्यता नहीं है। देखो, कन्हैयालालजी! यह पुत्र मेरे हृदय का हार है। (ऐसा माननेवाला) मूढ़ है। तेरी श्रद्धा अनुसार पदार्थ नहीं है। वह तो परवस्तु ज्ञेय है और जैसा पदार्थ है वैसा तू मानता नहीं है। यह पुत्र मुझे हुआ इसलिये मुझे राग होता है। यह होशियार है इसलिये राग होता है और पागल जन्मा इसलिये मुझे द्वेष होता है। पदार्थ का स्वरूप ऐसा नहीं है और तेरी मान्यता है ऐसा पदार्थ नहीं है। समझ में आया? '**इसलिये उसको आकुलता ही रहती है।**' आकुलता ही रहती है, ऐसा लिया। अब आगे।

'**जैसे--पागल को...**' अब न्याय देते हैं पदार्थ के स्वरूप का। जैसे कोई पागल को किसीने वस्त्र पहनाया। '**पागल को किसीने वस्त्र पहिना दिया। वह पागल उस वस्त्र को अपना अंग जानकर अपने को और वस्त्र को एक मानता है।**' पहिना दिया किसीने और... अब वह पागल उस वस्त्र को अपना अंग जानकर स्वयं को और वस्त्र को एकरूप मानता है। परन्तु '**वह वस्त्र पहिनानेवाले के आधीन होनेसे...**' पहिनानेवाला पहिनाये तब तक रखे, और निकाल दे तो (निकाल देना पड़े), निकालो चलो। इसको रख दो पागल की होस्पिटल में। ऐसा वस्त्र उसे नहीं

हो सकता। वह वस्त्र ले ले। वह पहिनानेवाला कभी उस वस्त्र को फाड़े, पहिनानेवाला हाँ! ध्यान रखना। अथवा पहिनानेवाला कभी वस्त्र को जोडे, खोंसे। वस्त्र छोटा लगे तो बड़ा करे, बड़े को छोटा करे। कभी ले ले, पागल को वस्त्र पहिनाया वह कभी ले ले, '**कभी नया पहिनाता है--इत्यादि चरित्र करता है।**' अर्थात् पहिनानेवाला इस प्रकार का वर्तन करे।

तब, '**वह पागल...**' उस वस्त्र की पराधीन क्रिया होने पर भी, वह पागल-बहावरा वस्त्र की पराधीन क्रिया होने पर भी, उसको अपने आधीन मानकर '**महा खेदखिन्न होता है।**' आहाहा..! अरे..! यह वस्त्र मेरा, यह ले जाता है, यह फाड़ता है। लेकिन उसने पहिनाया है, उसकी इच्छानुसार छोटे का बड़ा करे, बड़े का छोटा करे। वह वस्त्र तो उसका है, कहाँ तेरा था? समझ में आता है? कभी ले ले, कभी नया भी करे। देखो, चार बात हुई। समझ में आया? पहिनानेवाला कभी वस्त्र को फाड़े, छोटा करे, टूकड़े करे, कभी जोड़ दे, कभी ले ले, कभी नया बनाये। इस प्रकार '**वह पागल उसे अपने आधीन मानता है, उसकी पराधीन क्रिया होडती है, उससे वह महा खेदखिन्न होता है।**' यह दृष्टान्त (हुआ)।

'**उसी प्रकार इस जीव को कर्मोदय ने शरीर सम्बन्ध कराया।**' यह शरीर का वस्त्र तो कर्म के कारण प्राप्त हुआ है, आत्मा के कारण नहीं। बराबर है यह? अब, '**यह जीव उस शरीर को अपना अंग जानकर...**' शरीर का अंग (अपना) जानकर। शरीर अच्छा हो तो मुझे ज्ञान हो, आँखें अच्छी हो तो मुझे ज्ञान हो, कान अच्छे हो तो मुझे ज्ञान हो, पैर चले तो मुझ से यात्रा हो। यह मूर्ख, शरीर को कर्म ने पहिनाया उसे अपना मानकर, जड़ की क्रिया से मुझे लाभ होगा, ऐसा मिथ्यादृष्टि मूढ़ मान रहा है।

'**यह जीव उस शरीर को अपना अंग जानकर अपने को और शरीर को एक मानता है।**' परन्तु '**वह शरीर कर्म के आधीन...**' देखो, ध्यान रखना। कर्म ने दिया है। शरीर किसने दिया है? कर्म ने। अब, '**कर्म के आधीन कभी कृष होता है,...**' पतला पड़ जाये। पतला पड़ जाये तब, अरे..! मैं पतला हो गया। परन्तु वह तो जड़ पतला हुआ है। वह तेरे आधीन नहीं है। कर्म ने दिया था, कर्म ने कृष किया। उसमें फाड़ा था, वस्त्र को फाड़ा था। यहाँ पतला किया। जिर्ण, जिर्ण हो गया। '**कभी स्थूल होता है,...**' उसमें जोड़े, टूकड़ा जोड़ दिया। इस प्रकार कभी परमाणु कर्म के कारण आकर पुष्ट हो, निरोगी हो, गाल लाल हो, लहुवाले हो वह सब कर्म के निमित्त की क्रिया जड़ की परमाणु में परमाणु के कारण होती है। अज्ञानी मानता है कि यह शरीर की पर्याय मेरी हो रही है, मेरा अंग है वह। मेरे कारण

होती है। कहो, समझ में आया?

एक पैर का ऐसे चलना, पैर, वह जैसा कर्म का निमित्त हो उस अनुसार पैर चले। मूढ़ ऐसा मान बैठता है कि मेरी इच्छानुसार पैर (चलता है)। मेरा अवयव है, वह मेरा अवयव है--मेरा अंग है। कहो, समझ में आया कि नहीं? ये दो-दो, पाँच-पाँच मिल चलता है तो आत्मा शरीर को चला सकता है न? कहो, तीस-तीस मिल पालीताणा से राणपुर जाये। तीस मिल होते हैं। आत्मा हो तो शरीर को चलाये न? हराम है कि आत्मा शरीर को चलता हो तो। वह कर्म की दी हुई वस्तु है। कर्म निमित्त है और वस्तु यह है। निमित्त से बात करते हैं न। इसको बाद में कहेंगे-स्वतंत्र वस्तु बाद में कहेंगे। अभी कर्म के निमित्त से बात शरीर की करी कि निमित्त से प्राप्त हुआ शरीर, निमित्त में मूढ़ता हो, शरीर कृष हो, अमुक करे तो पुनः ... तो शरीर पुष्ट हो।

'**कभी नष्ट होता है,...**' आयुष्य पूर्ण हो गया तो शरीर चला जाये। '**कभी नवीन उत्पन्न होता है,...**' नवीन शरीर हो, नया-नया। नष्ट हो जाये माने मृत्यु। नया उत्पन्न हो माने जन्म। '**इत्यादि चरित्र...**' इत्यादि में चलना, फिरना, पैर ऐसा करना, पैर ऊपर-नीचे होना वह सब जड़ की क्रिया कर्म के निमित्त अनुसार होती रहती है। फिर भी मूढ़ मिथ्यादृष्टि, यह शरीर की क्रिया मेरे कारण होती है, यह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी मूढ़ है। जैसा वह मानता है वैसा शरीर नहीं है और शरीर है ऐसा मानता नहीं है। बराबर है यह बात? यह तो बड़े-बड़े साधु नाम कहलानेवाले ऐसा मान रहे हैं। दलीचंदभाई! नाम धारण करनेवाले, हाँ! यह जड़ मिट्टी--धूल, शरीर और उसका पतला पड़ना, स्थूल होना, सड़ जाना, नवीन-नवीन इत्यादि अर्थात् वर्तमान में चलना.. भाई! वर्तमान में ऐसा नहीं? ऐसे गिर जाना, ऐसे सोना, गरदन का ऐसा होना, गरदन का ऐसा होना, वह आत्मा के आधीन नहीं है। यह बात कहाँ-से आयी? समझ में आया?

मिथ्यादृष्टि, पदार्थ का स्वभाव उसके कारण परिणमे और उसमें कर्म का निमित्त है। तब (वह) कहता है कि मेरे कारण से ऐसा होता है। बराबर ऐसा करुँ, पैर ऐसे चौड़े करुँ। कहते हैं, आँख में .. रखे। तब कहे कि, मुझे ... कील लगी, पुनः डॉक्टर ने ठीक कर दिया। डॉक्टर ने बापू! बहुत उपकार किया। वह सब कर्म की चेष्टा निमित्त का इस देह में होते रहते हैं। अज्ञानी मानता है कि मैंने किया। आँख में मोतियाबिंद उतारे तो कहते हैं न, रोशनी मिले। धूल में मिली? कहाँ-से मिली? ...भाई! ये मोतियाबिंद उतारते हैं न? फूली, फूली। फूली, मोतियाबिंद क्या कहते हैं? वेल। वेल-वेल होती है न? आँख में वेल (नेत्ररोग) पकती है। परन्तु वेल

पकनी, फूली का होना, मोतियाबिंद रहना, वह कर्म का निमित्त। मोतियाबिंद का टलना वह कर्म का निमित्त। तब कहता है कि, इस जीव ने मेरा अच्छा काम किया और मेरी होशियारी के कारण मैंने यह अच्छा काम किया। उस वस्तु का स्वभाव ऐसा नहीं है, ऐसा यह मानता है और मानता है वैसा पदार्थ नहीं है। ... कैसा है?

यह होंठ हिलना, मैं धीरे-धीरे बोला तो भाषा सुलटी निकली, जोर से बोला तो ऐसी निकली, यह सब इसकी (क्रिया है)। यहाँ चार बोल तो स्थूलरूप से लिये हैं। छोटा, स्थूल, मरना और जन्म होना। '**इत्यादि चरित्र होते हैं।**' उस वस्त्र में भी ऐसे लेना। वह वस्त्र लंबा हो तो उसको ऐसा करे, वह मनुष्य। ये लड़के को करते हैं न उसकी माँ? टट्टी करवाने बिठाये तो कपड़ा ऊँचा करे, ऐसा करे, वैसा करे। वह तो उसके आधीन है, इसके आधीन कहाँ था? ऐसे यह वस्त्र--शरीररूप वस्त्र जड़ मिट्टी--धूल पुद्गलास्तिकाय है। पोपटभाई! उसके होंठ हिलना, आँखें ऐसे होना, ऐसे होना, हाथ का ऐसा होना, अँगूली का ऐसे मुड़ना, वह सब क्रिया जड़ की स्वतंत्र पदार्थ हुआ करता है। उसमें मात्र कर्म का निमित्त है। तब, अज्ञानी मानता है कि मेरे कारण यह होता है। उसका नाम बड़ा मिथ्यादृष्टि--अज्ञानी--अधर्मी उसे कहने में आता है। बराबर है यह ज्ञानचंदजी? ठीक बात है? लो।

शरीर में '**इत्यादि चरित्र होते हैं।**' हैं! शरीर का एक अवयव बढ़ जाये, हड्डी बढ़ जाये, ये कोंढ बढ़ जाये। नहीं होता है? कोंढ निकले। कोंढ समझते हो? (पीठ की) हड्डी बाहर निकलती है। आँख में ऐसा हो जाता है, वैसा हो जाता है, दांत निकल जाये। अरे..! मुझे ऐसा धक्का लगा, आदमी ने धक्का मारा तो मेरा दाँत टूट गया। हराम है। वह तो कर्म ने दी हुई उसकी विचित्र कला (है)। वह, निमित्त से जड़ में होता रहता है। वह वस्त्र पहिनानेवाले के आधीन है वस्त्र को कैसे रखना वह। वैसे, शरीर को कैसे रखना यह कर्म के निमित्त के आधीन है। कोई उपचार के आधीन है नहीं। पोपटभाई! बात में बड़ा फ़र्क़, पूर्व-पश्चिम जितना। रतिभाई! ये दवाई क्यों करवाते होंगे लोग? वह तो कहते हैं कि इच्छा हो। शरीर पुष्ट रहना और कृष होना, वह तो जैसा कर्म का निमित्त हो उस अनुसार बनता है।

उस शरीर में '**इत्यादि चरित्र होते हैं।**' कहो! पैर का ऐसे फिसल जाना। समझ में आया? केले का छिलका आये तो पैर फिसल जाये, वह किसकी कला है? छगनभाई! वह कर्म के निमित्त की शरीर की अवस्था है। मैंने ध्यान नहीं रखा इसलिये पैर फिसल गया। हराम बात है। तुझे पदार्थ की खबर नहीं है। नव पदार्थ में अजीव पदार्थ किसे कहना? पुद्गलास्तिकाय किसे कहना इसकी श्रद्धा की भी तुझे खबर नहीं है। और मिथ्यादृष्टि को श्रद्धा की खबर नहीं है। चाहे जैसे क्रियाकांड करे तो भी

उसे सब अधर्म ही है। उसे धर्म-बर्म होता नहीं। कहो! इत्यादि चरित्र इस प्रकार उसकी पराधीन क्रिया होने पर भी '**यह जीव उसे अपने आधीन...**' जानकर। अपने आधीन जानकर, देखो! मैंने शरीर को ऐसे नहीं रखा, दो घण्टे मैं ऐसे ही बैठा रहा तो पैर अकड़ गया, पैर अकड़ गया। अब, पैर तो अकड़ने कारण अकड़े बिना रहे नहीं, तीन काल तीन लोक में। तेरी इच्छा और तेरा ज्ञान वहाँ काम नहीं आता। वह तो जैसे कर्म का निमित्त हो, वैसा होता है। मैंने पैर ऐसे रखा तो मुझे झुनझुनी हो गयी। ऐसे झुनझुनी हुई थी और मैं खड़ा हुआ, ध्यान नहीं रहा तो गिर गया। झुनझुनी हुई थी, दो मिनिट खडा रहा होता तो झुनझुनी ऊतर जाये तबतक तो गिरता नहीं। हराम बात है। वह गिरने की जड़ की क्रिया के समय हुए बिना रहे नहीं। उस विचित्रता की कला का चरित्र जड़ का जड़ के कारण से (होता है), उसमें पूर्व कर्म का निमित्त है। तेरी इच्छा से उसमें कुछ बनता नहीं।

मुमुक्षु :-- ऐसा मानने से जीव को क्या लाभ?

उत्तर :-- ऐसा मानने से संसार का नाश होकर आत्मा का आनंद आये। ऐसा मानने से पराधनता का नाश होकर स्वाधीनता हो। इसके अतिरिक्त तीन काल में दूसरा कोई उपाय है नहीं।

देखो न! कितनी बात करी है। इस शरीर से शुरूआत की है, बाद में दूसरी कहेंगे, हाँ! पहले निमित्त से यहाँ बात शुरू की है। कर्म का निमित्त है। दूसरे में स्वतंत्र कहेंगे। समझ में आया?

उस पागल--बहावरे को जैसे दूसरे मनुष्य ने वस्त्र पहनाया। उसकी माँ के आधीन है कि नहीं? ये लड़के को वस्त्र पहनाते हैं। उसकी माता उसको ... पहनाये, सर्दी में, ऐसे डाले, ऐसे डाले, चहेरा खुल्ला रखकर ऐसे डाले, फिर ऊपर उठा ले। पोपटभाई! उसकी माता के आधीन है कि नहीं? क्या पहनते हैं? ... फलाना पहने, ऊल्टा पहने, ऐसा करे, वैसा करे, वह तो उसकी माता के आधीन है, उसको कहाँ भान था?

ऐसे जड़ की पर्याय चैतन्य का ज्ञान और राग के आधीन नहीं है। शरीर की यह अवस्था इस अँगूली का ऐसे हिलना और ऐसे होना आत्मा के आधीन तीन काल में नहीं है। मिथ्यादृष्टि मूढ़ ने पदार्थ के स्वभाव को जाना नहीं है। इसलिये उसकी श्रद्धा विपरीत है। उस अनुसार पदार्थ का स्वरूप नहीं है। पदार्थ उसके कारण हो रहा है। फिर भी पदार्थ है ऐसी श्रद्धा नहीं है, श्रद्धा है वैसा पदार्थ नहीं है। इसलिये उसको मिथ्यादर्शन कहते हैं। समझ में आया? दस्त को कब्जे में रखना चाहे कि दस्त की खाज हो रही है, बाहर जाना कि अन्दर रहना? अरे..! एक मिनिट

के लिये भी तेरे हाथ की बात नहीं है। वह दस्त जब निकल जानेवाला है तब निकल जायेगा। पेशाब जब छूटनेवाला है तब छूट जायेगा। पेशाब छूटनेवाला होगा तब छूट जायेगा। तू रोकना चाहे तब रुक जायेगा (ऐसा नहीं है)। ... कोई जड़ की पर्याय अन्य प्रकार से हो। वह शरीर का चरित्र नाम वर्तन, उसमें कर्म का निमित्त है उस प्रकार से वर्तन होता रहता है।

आत्मा उसका जाननेवाला दृष्टा-ज्ञाता है ऐसा नहीं मानकर मेरे आधीन प्रवर्तेगा और हम रखना चाहेंगे वैसे रहेगा। बहुत लोग नहीं मानते हैं? पथ्य खायें तो आयुष्य लंबा बढे, श्वास बहुत कम लेना जिससे आयुष्य लंबा (रहे), शरीर बढ़े। समझ में आया? पैर थलकना नहीं चाहिये, नाभि में ... लगे तो हमें निरोगता रहे। यह सब मूढ जीवों की मान्यता है।

मुमुक्षु :-- आरोग्य शास्त्र...

उत्तर :-- आरोग्य शास्त्र ही झूठा है पूरा। और उसके कारण रहता है, आरोग्य शास्त्र कौन कर देता है? आरोग्य शास्त्र बनानेवाला मर गया कि नहीं? धनवंतरी मर गया कि नहीं? धनवंतरी बड़ा वैद्य कहलाता था। जड़ की पर्याय कर्म के निमित्त के आधीन है। उसने यह पहनाया। .... पहनाया कहा न? लोग खोल कहते हैं न? कहो। एक बार कहते थे वह, खोल पहनाया। .... यह खोल, इस खोल को जैसा कर्म का निमित्त बने ऐसी उसकी चरित्र दशा होती रहती है। वस्त्र होता है न? यह नस .. हो जाती है। देखो, नहीं होती है? ऐसे हो जाये, मांसपेशी में दर्द होना, फलाना हो जाये। वह सब विचित्र क्रिया जड़ की वर्तमान पर्याय जड़ की है, उसमें निमित्त कर्म का है। आत्मा के कारण उसमें कुछ हो, यह बात नहीं है। लो, उसमें कर्म का निमित्त आया, आत्मा का निमित्त तो कुछ हुआ ही नहीं, इस ओरसे। इस ओर से निमित्त भी नहीं हुआ। भाई नहीं है? ...भाई। समझ में आया?

ऐसे कहा कि कर्म के निमित्त अनुसार यहाँ हो, परन्तु आत्मा के निमित्त अनुसार हो, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध भी नहीं लिया। समझ में आया? यह तो हस समय होता है। जैसा कर्म के उदय का निमित्त, वैसी जड़ में पर्याय जड़ के कारण स्वतंत्र होती रहती है। उसमें कोई नियम बदलता नहीं। फिर भी अज्ञानी माने। वह पराधीन क्रिया होने के बावजूद, अपने आधीन नहीं है, ऊलटी हो जाये, जुल्लाब हो जाये, निरोगी (रहे नहीं)। अरे...! हमें आया नहीं। भाई! पहले आये होता न, बुखार को बहुत दिन हो गये, पहले आये होते तो (मिट जाता)। अरे..! पहले, बाद में था ही कब? छः महिने हो गये बुखार को, यदि चार महिने पहले आये होते तो क्षय नहीं होता। अब, दूसरे नम्बर का क्षय हो गया है। वह तो जानेवाली पर्याय जायेगी

और रहनेवाली रहेगी। तीन काल तीन लोक में देह की पर्याय जिस क्षण जो होनेवाली है, उसका चरित्र कोई आत्मा बदल नहीं सकता। ओहोहो...! भारी बात भाई! इसमें क्या हो? यह देह मेरा नहीं है और मैं आत्मा ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ऐसा करके स्थिति न्यून करे और स्वभाव बढ़ाये तो स्वाधीनता हो। बाकी इसमें कुछ बदले ऐसा नहीं है। वह तो मिट्टी और धूल है। जिस क्षण जैसा चरित्र (होनेवाला है), चरित्र यानी उसका वर्तन जो होनेवाला है वह होगा। वर्तन माने उसकी पर्याय जो होनेवाली है वह होगी। परन्तु मिथ्यादृष्टि को यह बात बैठती नहीं। त्याग नाम धरानेवाले को यह बात नहीं बैठती है। त्याग तो था ही कब? ...भाई! अभी अजीव और जीव दो तत्त्व भिन्न-भिन्न है। जीव पदार्थ भिन्न, अजीव पदार्थ भिन्न है। शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न है। उसका चरित्र--वर्तन क्षण-क्षण में बने वह मेरे आधीन है ही नहीं। वह तो पूर्व कर्म अनुसार होता रहता है, मैं उसका साक्षी और दृष्टा हूँ। ऐसा नहीं मानकर, इसको मैंने किया, ऐसा नहीं हुआ इसलिये ऐसा हो गया, उसकी यह मान्यता असत्य है। उसको स्वयं के आधीन जानकर '**महा खेदखिन्न होता है।**'

अब, दूसरी बात। '**तथा जैसे -- जहाँ वह पागल ठहरा था...**' अब दूसरी बात आयी। पहले शरीर आया, क्योंकि वह साथ-साथ सदा रहता है इसलिये उसको पहले लिया। अब कहते हैं कि एक पागल कहीं बैठा था। '**वहाँ मनुष्य,...**' एक पागल बाहर घुमने निकला और नदी किनारे बैठा। ऐसे में किसी जगह से '**मनुष्य, घोड़ा, धनादिक आकर उतरे...**' लक्ष्मी आदि, समझे न? कोई पैसा ... राजा, लोग निकले, कोई राजा हो, दिवान हो वह निकले। दस बजे का समय था। वह पागल भी वहाँ आकर पत्थर पर बैठा। दस बजे तो हाथी, घोड़ा, मनुष्य, नौकर, पैसा, रूपया, हीरा, माणिक गिनने लगे। पागल-बहावरा, पागल। '**घोड़ा, धनादिक आकर उतरे...**' मोहनभाई! क्या आया? हीरा, माणिक और पैसा आकर उतरा, जहाँ पागल बैठा था वहाँ। धनादि, वस्त्र आये, मकान आया, स्त्री आयी, पुत्र आया। समझ में आया?

'**वह पागल उन्हें अपना जानता है।**' लो, उन सब को पागल अपना जानता है। ... '**वे तो उन्हीं के आधीन कोई आते हैं,...**' पागल है उसके आधीन आये हैं? राजा आकर ठहरा, समय हुआ तो राजा चलने लगा। लोग आये थे, खा-पीकर लोग चलने लगे। घोड़ा आदि पानी पीने आये थे वह पानी पीकर चलने लगे। पागल कहता है, ये क्यों जा रहे हैं? लेकिन तेरे कारण कहाँ आये है वे? समझ में आया? '**कोई जाते हैं, कोई अनेक अवस्थारूप परिणमन करते हैं;...**' कोई स्नान करता है, कोई पानी में डूबकी लगाये, कोई कपड़े धोये, कोई सुखाये, नदी

में आकर। कोई लोटे, कोई सोये। '**वह पागल उन्हें अपने आधीन मानता है, उनकी पराधीन क्रिया हो तब खेदखिन्न होता है।**' अरे..रे..! लेकिन मुझे पूछकर तो करो, पागल कहता है। ...भाई! पागल आकर बैठा था वहाँ वह सब वस्तुएँ आयी। आप को जाना था, लेकिन मुझे पूछना तो था। भले ही जाना था। लेकिन तुझे कौन पूछे? पागल! तेरे लिये कहाँ आये हैं और तुझे पूछकर कहाँ जानेवाले हैं। हम तो नदी किनारे पानी पीने आये थे, पीकर चल दिये। तेरे समीप विश्राम करने बैठे थे, भाई! विश्राम करके चलने लगे। पागल मानता है, ये मेरे आधीन है। अरे..रे..! पूछते नहीं है। यह गाय चली जा रही है, यह हाथी चला जाता है, लोग चलने लगे, अरे..! ये सब आये थे और चले जाते हैं।

'**उसी प्रकार यह जीव जहाँ पर्याय धारण करता है...**' वह तो दृष्टान्त है। जहाँ शरीर धारण किया, शरीर की बात पहले ली थी। जहाँ शरीर धारण किया, बनिये में, किसान में, नीच जाति में, नागर में कहीं से आया। '**वहाँ स्वयमेव पुत्र...**' आया। दूसरी जगह से आये, हाँ! वह पागल बैठा था वहाँ जैसे लोग कहीं से आये, वैसे यह कहीं जन्मा और पुत्र कहीं से आया। घोड़ा कहीं से आया, स्त्री कहीं से आयी, लक्ष्मी कहीं से आयी, मकान के बड़े पत्थर पोरबंदर से आये। सफेद आते हैं न भाई? मक्खन जैसा सफेद। राजुला का पत्थर। समझे न? ... किसका? ... जिथरी का, वह सब पत्थर मकान में लग गये। ..भाई! कहो, पागल जैसे एक गाँवमें से बाहर निकला, अपना गाँव छोड़कर कहीं गया उसमें ... एकत्रित हो गयी। लक्ष्मी, स्त्री, पुत्र, यह-वह, वस्त्र, जेवर, इज्जत, आढ़तिया स्वयं प्राप्त होते हैं, ऐसा यहाँ कहा है। देखा? वहाँ कर्म का निमित्त आया था, देखो! उसमें शरीर में लिया था।

यह वस्तुएँ तो उसके कारण आकर प्राप्त होती है, तेरे कारण से कहीं आती नहीं है। तेरी इच्छानुसार नहीं आयी है। कोई अन्य जगह पुत्र का आत्मा था, वहाँ से मरकर यहाँ आया। कोई घोड़ा आया, घोड़ागाड़ी आयी, कोई हाथी आये, कोई बैल आये, कोई गाय आयी, भैंस आयी, पँडवा आये, समझ में आया? मित्र आये और आढ़तिया हुए कहीं से एकत्रित होकर। आढ़तिया स्वयं प्राप्त होता है। '**यह जीव उन्हें अपना जानता है।**' वस्तु कहीं से आयी, उसे अपनी जानता है। भाई! बापू! तू मेरा पुत्र है, मैं तेरा पिता हूँ। यह लक्ष्मी मेरी, यह पैसा मेरा, यह मकान मेरा, यह गाय, भैंस मेरी, '**वे तो उन्हीं के आधीन कोई आता है...**' उसके कारण आये और उसके कारण जाये। मोहनभाई! बराबर होगा यह? होशियारी नहीं होने के कारण जाये या वह उसके कारण जाये? होशियारी नहीं थी इसलिये नहीं (जाते हैं)? भाई! उसको पैसा रखना आया नहीं इसलिये चली गयी। व्यवस्था करनी आनी चाहिये।

पराधीन होकर कोई लक्ष्मी, पुत्र, स्त्री, लड़के, वस्त्र, मकान आये और कोई जाये, उसकी स्थिति पूर्ण हुई अवस्था की पर्याय की दशा, तो चले जाये, उसके कारण।

उसमें आया था न? पतला, स्थूल, जन्मना और मरना और बीच की अवस्थाएँ। बीच की सब शरीर की अवस्थाएँ शरीर के कारण हो। समझ में आया? ऐसे में कहीं शरीर धारण किया वहाँ सब आये। ओहोहो..! पदार्थ की जिस अवस्थारूप परिणमे वह उसके कारण हो। पिताजी कुछ छोड़कर नहीं गये थे, यह सब हमने (अपने आप किया)। बड़े लेख लिखने में आये। जात मेहनत से सब इकट्ठा किया, बापू! उसके पिताजी के पास तो दो-पाँच हजार की पुंजी थी, इसने पाँच-पचास लाख कमाये, इज्जत जमायी, बड़ी इज्जत, पुत्र-पुत्री का ब्याह किया, शान व शौकत सब छोड़कर मर गया।

यहाँ कहते हैं कि, भगवान! शांत था, धीरा हो। देखो, यहाँ भी वह वस्तुएँ आती है वह उसके कारण आयी, उसके कारण जाये, बीच में उसके कारण अवस्थाएँ होती रहे। बीच में माने समझ में आया? बीच में रहने के काल में किसी के घर पर जाये, किसी के घर ऐसे जाये, पिटारा बदले, फलाना बदले, लड़के भी कहीं गये, कोई लड़का अलग भी हो गया। जीवित लड़के अलग हो जाये, लो। वाड़ीभाई! जीवित लड़के चले जाये। बापू! आप बैठो। हमें अलग होना है। मेरी स्त्री कितनों की रोटियाँ बनायेगी, दस घर के? इसके बदले मैं और मेरी पत्नी अलग रहेंगे तो ठीक होगा। स्वतंत्र (हुए)। उसके कारण है, हाँ! तेरे कारण नहीं। वह (पिताजी) व्याकुलता करे, इतना पढ़ाया, इतने पैसा खर्च किया, किसी का कहना मानता नहीं। तेरा कब था तो तेरा कहना माने?

'**अनेक अवस्थारूप परिणमन करते हैं...**' ऐसी उनकी पराधीन क्रिया होती है। '**उन्हें अपने आधीन मानता है...**' लो, उसके आधीन है और मानता है अपने आधीन। अपने आधीन मानकर यह जीव खेद.. खेद.. खेदखिन्न (होता है)। यह सबको लागू पड़ता होगा कि नहीं? मोहनभाई! सब त्यागी को, भोगी को, सब को? सब एक जाति के। जो कोई आत्मा के अतिरिक्त शरीर और अन्य वस्तु, आत्मा के आश्रित वह अवस्था होती है, ऐसा माने वह सब मिथ्यादृष्टि अज्ञानी, मूढ हैं। उसे धर्म का कोई जानपना नहीं है। बड़ी बात भाई! आत्मा पर के लिये निकम्मा होगा? आत्मा ऐसी अनंत शक्ति का स्वामी, आप तो बहुत बड़ा वर्णन करते हो। वह तेरे में या अन्य किसी में? हैं! अनंत शक्ति का स्वामी, अनंत गुण का स्वामी, महा आनंद का स्वामी, लेकिन तेरे में। तू तेरे में ऊलटा, सुलटा कर। बाकी पर में तेरे से कुछ हो ऐसी शक्ति पर में (नहीं है)। तेरे से हो ऐसा पर में भी नहीं है और पर से

तेरे हो ऐसी शक्ति तेरे में भी नहीं है। समझ में आया?

दो दृष्टान्त दिये, लो। एक बहावरा और वस्त्र का, और एक बहावर और अन्य वस्तु आकर चली जाये और वर्तमान दो घण्टा रहे, दो घण्टे रहकर उठे, जाये, जागे, सोये। वैसे यह पागल जैसा मनुष्य, मिथ्यादृष्टि पागल विपरीत मान्यता में तुझे उन्माद हुआ है। उन्माद है, उन्माद। लो, यहाँ तो निमित्त की बात उड़ायी। समझ में आया? समझ में आया कुछ? उन्हें अपने आधीन मानकर यह जीव खेदखिन्न होता है। क्योंकि आत्मा पर का कुछ करने में समर्थ है नहीं। कहो, बराबर है यह? आत्मा को शरीर मिले वह शरीर के स्वभाव अनुसार शरीर करे। और वस्तु की प्राप्ति वस्तु के कारण होती है, आत्मा के कारण उसमें हो नहीं सकता। फिर भी अज्ञानी खेदखिन्न और दुःखी होता है। विशेष कहेंगे...

(श्रोता :-- प्रमाण वचन गुरुदेव!)

बुधवार, दि. १६-५-१९६२,
चौथा अधिकार, प्रवचन नं. ३

मोक्षमार्ग प्रकाशक, चौथा अध्याय है। देखो! '**अनादि काल से जीव कर्म के निमित्त से...**' जो उपाधिभाव होता है, उसको भी अपना मानता है, वह आया यहाँ। जीव और अजीव का वर्णन चलता है। देखो क्या कहते हैं? देखो! आत्मा एक पदार्थ है और शरीरादि अनंत परमाणु का पिंड है तो अनंत द्रव्य है, यह (आत्मा) एक द्रव्य है। इस जीव को ऐसी बुद्धि उठती है कि 'यह मैं हूँ'। शरीर अनंत परमाणु का पिंड, यह मैं हूँ, यह मैं हूँ ऐसी बुद्धि होती है। बराबर है? शरीर से भिन्न और पाँच इन्द्रिय के विषय से भिन्न आत्मा है। अनादि काल से इन्द्रिय से विषय देखे और आत्मा इन्द्रिय से पार है उसकी प्रतीत की नहीं। अपनी शुद्ध चैतन्यसंपदा अनादि काल से शरीरादि परमाणु में, यह मैं हूँ, यह मैं हूँ (ऐसा माना) तो आत्मा उससे भिन्न है, ऐसी खोजने की उसकी दृष्टि रहती नहीं।

'**तथा स्वयं जीव है,...**' आत्मा तो चैतन्य चैतन्यस्वरूप जीव है। उसका स्वभाव